नियमसार गाथा १२५

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२५।।

सावद्य-विरत, त्रिगुप्तमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२५॥

सामायिक किसे कहते हैं ? यह तो सामायिक कहो, प्रायश्चित्त कहो, कायोत्सर्ग कहो, धर्मध्यान कहो, समकित दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो, वह सब एक ही बात है। नाम भिन्न-भिन्न पाड़कर विस्तार किया। सामायिक।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) जो सर्व सावद्य व्यापार से रहित है,... आहाहा! बाहर के पाँच इन्द्रियों के विषयों के सावद्य व्यापार ने घेरा डाला है। उसमें से निवृत्त नहीं होता। आहाहा! पाँच इन्द्रियों के विषयों से, सावद्य से अर्थात् व्यापार से रहित है। **जो त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त है...** आहाहा! इस ओर से निवृत्ति और ऐसे अन्तर में मन-वचन-काया से आत्मा में गुप्त करना। मन-वचन-काया से आत्मा में गुप्त होना। मन-वचन-काया की क्रिया, वह भी कोई सामायिक की नहीं है। आहाहा! **तथा जो समस्त इन्द्रियों के व्यापार से विमुख है,...** पाँचों इन्द्रियों का जो व्यापार... आहाहा! बोलना, सुनना, देखना, सूँघना, स्पर्श करना - ऐसे पाँचों इन्द्रियों के व्यापार से विमुख है। **उस मुनि को...** ऐसे मुनि को

---

* **व्यासंग=गाढ संग; संग; आसक्ति।**

सामायिकव्रत स्थायी है,... स्थायी अर्थात् सच्चा है। उसका सामायिक सच्चा है। **ऐसा कहा है।**

यहाँ (इस लोक में) जो एकेन्द्रियादि प्राणीसमूह को क्लेश के हेतुभूत समस्त सावद्य के व्यासंग से विमुक्त है,... जो प्राणी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ऐसे प्राणियों का समूह जो ढ़ेर... आहाहा! उसके **क्लेश के हेतुभूत...** उन जीवों को क्लेश का कारण, ऐसा **समस्त सावद्य के व्यासंग...** सावद्य का संग, गाढ़ संग, आशक्ति से **विमुक्त है,...** आहाहा! एकेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रिय। अपनी पाँचों ही इन्द्रियों से निवृत्त, अनीन्द्रिय में जा। तब सामायिक होती है। इन्द्रियों की ओर के झुकाव में सामायिक नहीं होती। आहाहा! एक तो सावद्य की ओर के झुकाव में सामायिक नहीं होती। दूसरा, इन्द्रियों के विषयों के झुकाव में सामायिक नहीं होती। आहाहा! सावद्य से भी निवृत्ति होना और पाँच इन्द्रिय के विषय के घेरा के.... चारों ओर विषय का घेरा। यह रूप, यह वर्ण, यह गन्ध, यह खाना, रस, और स्पर्श। आहाहा! इन पाँच इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होना। है ? आहाहा!

समस्त इन्द्रियों के व्यापार से मुक्त है। जिसे इन्द्रियों का व्यापार ही नहीं है। जिन्हें इन्द्रियों का व्यापार है ही नहीं, उन मुनि को सामायिक व्रत है। आहाहा! ऐसे मुनि को सामायिक व्रत है। सामायिक नाम धरावे, यहाँ तो आठ वर्ष की लड़की सामायिक करके बैठे, दो सामायिक, पाँच सामायिक करे और लोग फिर कुछ रुपया-दो रुपया दे। हो गयी सामायिक। देनेवाले को धर्म का अनुमोदन आया। आहाहा! एक-एक बात मिथ्या है। आत्मा अन्दर प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, उसकी सन्मुखता में गये बिना स्थिरता नहीं होती और सामायिक नहीं होती। आहाहा!

एकेन्द्रियादि प्राणीसमूह को क्लेश के हेतुभूत समस्त सावद्य के व्यासंग से विमुक्त है,... गाढ संग;... व्यासंग का अर्थ किया है। अकेला संग नहीं लिया। व्यासंग। व्यासंग अर्थात् **गाढ संग; संग; आसक्ति।** आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव के कारण...** आहाहा! सावद्ययोग से निवृत्ति। पाँच इन्द्रियों के झुकाव से निवृत्ति और मन-वचन-काया के झुकाव से भी निवृत्ति। आहाहा! इस ओर अन्दर ढले। सावद्य से निवृत्ति करके, इन्द्रियों की ओर के झुकाव को छोड़कर

ढले; और मन-वचन-काया के व्यापार को छोड़कर आत्मा में ढले। आहाहा! **उस मुनि के सामायिक व्रत स्थायी है।** उस मुनि को सामायिक सच्ची है। स्थायी अर्थात् सत्य है। बाकी तो सब कहनेमात्र सामायिक की है। ये गृहस्थ लोग सामायिक करते हैं न? सवेरे उठकर दो घड़ी सामायिक की। णमो अरिहंताणं करके कुछ गिनकर, न गिनकर दो घड़ी निकाले तो हो गयी सामायिक। आसन बिछाकर। सामायिक तो... बापू! कठिन बात है।

सावद्यपने से निवृत्ति, इन्द्रियों के विषयों से निवृत्ति और मन-वचन-काया के योग से निवृत्ति। आहाहा! गाथा एक में (प्रत्येक में) कहते हैं, उसे सामायिक स्थायी कही गयी है। आहाहा! यह सब बाह्य वस्तु है और बाह्य वस्तु को अपनी मानना, वह तो बहिरात्मा है। सावद्य को पाँच इन्द्रियों को, उनके विषयों को, मन-वचन-काया को 'मेरा' मानना, वह बहिर्वस्तु है; इसलिए बहिरात्मा है। बहिर्वस्तु को अपनी मानना अर्थात् बहिर्आत्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे सामायिक नहीं होती। सावद्ययोग से, इन्द्रियों के विषयों से, मन-वचन-काया इन तीनों से अत्यन्त निवृत्ति होकर अन्दर में अकेला यह आत्मा। अकेला ध्यान में आत्मा... आहाहा! जहाँ अकेली आत्मा की समता, आनन्द का-समता का वेदन; जिसमें सावद्य आदि कुछ असर नहीं। ऐसी दशा को सामायिक व्रत कहा जाता है। आहाहा!

यह सामायिक तो बहुतों ने की होगी। वाड़ा के नाम से सामायिक करे। हम तो १० वर्ष की उम्र से करते थे। १० वर्ष की उम्र से। यह तो ९१ हुए। ८० वर्ष पहले से करते थे। जैनशाला पढ़कर सामायिक करो। आहाहा! वह सामायिक नहीं। आहाहा! जिसमें समता अर्थात् वीतरागभाव का लाभ हो; सावद्ययोग, मन-वचन-काया और इन्द्रियों का व्यापार, वह तो विकारी भाव क्लेश है। आहाहा! वह चाहे तो शुभभाव हो तो भी क्लेश है। शुभभाव, वह क्लेश है। उससे निवृत्त होकर अपने आत्मा में लीन होना, इसका नाम सामायिक कहा जाता है। आहाहा! अभी सामायिक किसे कहना, यह सब सुना न हो, निर्णय न किया हो। जाकर आसन बिछाकर बैठे।

मुमुक्षु : सुनानेवाले ही नहीं, कहाँ जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब फेरफार बहुत हो गया। बहुत फेरफार। आहाहा! हीराजी महाराज बेचारे हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। बस, वे मानते कि यह हमारे पंच महाव्रत हैं। हम

तो निर्दोष आहार लेते हैं, विहार करते हैं, शास्त्र-प्ररूपणा करते हैं। हम मुनि नहीं होंगे तो मुनि कौन होगा ?—ऐसा कहते थे। मूलचन्दजी... मूलचन्दजी के साथ में थे, ऐसा कहते कि हम मुनि नहीं होंगे तो अभी मुनि कौन है ? अपने ऐसा कि सावद्य लेते नहीं, निर्दोष आहार लेते हैं। आहाहा! बाहर की क्रिया में मान बैठे, बस।

यहाँ तो कहते हैं, **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार...** शुभभाव भी मन का व्यापार। आहाहा! शुभ, मैं सामायिक करूँ - ऐसा जो शुभराग, वह भी सामायिक नहीं। आहाहा! शुभराग से हटकर अन्तर में वीतरागभाव की ओर उन्मुखता जाए, तब वीतरागी समता पर्याय प्रगट हो, तब उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव के कारण त्रिगुप्त...** मन-वचन-काया, तीन से गुप्ति **और स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र नामक पाँच इन्द्रियों द्वारा उस-उस इन्द्रिय के योग्य विषय के ग्रहण का अभाव...** सुनने का भी अभाव, बोलने का भी अभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तर में जाने में सद्भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में जाने के लिये तैयारी। भगवान विराजता है, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति है, वहाँ जाना। यहाँ से सब से निवृत्त होना, उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! वह न हो तो ऐसी सामायिक भी साधन करते-करते होगी न ? इस सामायिक का साधन करेगा तो किसी दिन सच्ची होगी, ऐसा है नहीं। ऐसी बाहर की सामायिक अनन्त बार की है। आहाहा!

पाँच इन्द्रियों द्वारा उस-उस इन्द्रिय के योग्य विषय के ग्रहण का अभाव... पाँच इन्द्रिय के विषय का-स्पर्श का ग्रहण करना, स्पर्श का ग्रहण करना, रूप का ग्रहण करना, गन्ध का, रस का और स्पर्श के ग्रहण करने का अभाव। आहाहा! पाँचों इन्द्रियों के विषय रुक जाएँ, तब अपने स्वरूप में अन्दर लीन हो, उसे यहाँ सामायिक कहते हैं। आहाहा! **विषय के ग्रहण का अभाव होने से बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** इन्द्रियों का व्यापार तो बन्द कर दिया। इन्द्रिय-व्यापार ही बन्द किया। आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया, सावद्य से तो निवृत्ति, यह तो ठीक, परन्तु इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया तीन से निवृत्ति। इन आठों से निवृत्ति। **बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** उनका व्यापार अन्दर सुनने

का, देखने का, कहने का सब बन्द किया। आहाहा! **बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** पाँचों इन्द्रियों के **विषय के ग्रहण का अभाव होने से बन्द की हुई इन्द्रियोंवाला है,...** आहाहा! **उस महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को...** उस महा मुमुक्षु मोक्ष का अभिलाषी **परमवीतरागसंयमी को वास्तव में सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है।** उसे सामायिक सच्ची है। सत्य सामायिक है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि के योग्य सामायिक की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को सामायिक और गृहस्थ को सामायिक होती है। यह तो विशेष परमवीतराग है। ऐसा है न? देखो न! कहा न, परमवीतरागसंयमी। परन्तु नीचे है, वह परमवीतरागसंयमी नहीं परन्तु अल्प वीतरागसंयमी है। चौथे में भी हो। मुनि की बात मुख्यता से करते हैं। परमवीतराग ऐसा लिया और महामुमुक्षु लिया। साधारण मुमुक्षु नहीं।

महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को वास्तव में सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है। आहाहा! इस सामायिक का अर्थ, जिसे सम्यग्दर्शन होता है, स्वरूप की ओर के झुकाव से पर पूरा जगत, विकल्प से पूरा जगत उससे भिन्न अपनी चीज़ का अनुभव हो, तब उसे समकितरूपी सामायिक होती है। समकित सामायिक, ज्ञान सामायिक और चारित्र। यह समकित सामायिक है। आहाहा! उसमें ज्ञान करके स्थिर हो, वह ज्ञान सामायिक है और रागरहित होकर स्थिर होना वह चारित्र सामायिक है। आहाहा! अनजाने लोगों को ऐसा कठिन लगता है। नये लोगों को (ऐसा हो) तो फिर हम यह सब करते हैं... सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, (वह कुछ नहीं?) सब धूल है।

मुमुक्षु : वह भी सामायिक कहाँ है? प्रौषध कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : थी कब सामायिक? प्रौषध-प्रतिक्रमण थे कब? अभी सम्यक् चीज़ क्या है? अन्तर चीज़ क्या है? उस अन्तर चीज़ में अन्तर में जाना, अन्तर चीज़ में अन्तर में जाना, उसमें स्थिर रहना, इसका नाम सामायिक है। आहाहा!

श्लोक-२०३

[अब इस १२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

इत्थं मुक्त्वा भव-भयकरं सर्व-सावद्यराशिं,
नीत्वा नाशं विकृतिमनिशं कायवाङ्मानसानाम् ।
अन्त:शुद्ध्या परम-कलया साक-मात्मान-मेकं,
बुद्ध्वा जन्तु: स्थिर-शम-मयं शुद्धशीलं प्रयाति ।।२०३।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार भव-भव उत्पादक सब सावद्य राशि को त्याग।
मन-वच-तन की विकृति को भी प्राप्त करावे सतत विनाश॥
अन्तरंग शुद्धि से परम कलामय निज आतम को जान।
स्थिर शममय शुद्ध शील को प्राप्त करे यह जीव महान॥२०३॥

श्लोकार्थ : इस प्रकार भवभय के करनेवाले समस्त सावद्यसमूह को छोड़कर, काय-वचन-मन की विकृति को निरन्तर नाश प्राप्त कराके, अन्तरंग शुद्धि से परम कला सहित (परम ज्ञानकला सहित) एक आत्मा को जानकर जीव स्थिरशममय शुद्ध शील को प्राप्त करता है (अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)॥२०३॥

श्लोक- २०३ पर प्रवचन

[अब इस १२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

इत्थं मुक्त्वा भव-भयकरं सर्व-सावद्यराशिं,
नीत्वा नाशं विकृतिमनिशं कायवाङ्मानसानाम् ।

अन्तःशुद्ध्या परम-कलया साक-मात्मान-मेकं,
बुद्ध्वा जन्तुः स्थिर-शम-मयं शुद्धशीलं प्रयाति ।।२०३।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **इस प्रकार भवभय के करनेवाले...** आहाहा! जो सावद्यपना है, इन्द्रियों का विषय और हिंसा तथा पाँच इन्द्रियों का विषय और मन-वचन-काया का प्रवर्तन, वह भवभय का कारण है। वह भव का कारण है। आहाहा! **इस प्रकार भवभय के करनेवाले समस्त सावद्यसमूह को छोड़कर,...** आहाहा! एकेन्द्रिय को भी मारना, वह सावद्यपना भवभय का कारण है। आहाहा! उससे भव होगा। कहाँ जाएगा? आहाहा! देह छूट जाएगी। आत्मसत्ता तो शाश्वत् है, तो दूसरे भव में चला जाएगा। फिर यह भव कब मिलेगा? जिसने सावद्य और इन्द्रिय के विषयों में लीनता की है और मन-वचन-काया की प्रवृत्ति में अपनापन माना है, वह आत्मा तो भवभ्रमण में भटकेगा। आहाहा! भवभयकरण। भव का जिसे अन्दर भय होता है। अरे! देह छूटकर कहाँ जाऊँगा? देह की स्थिति पूरी होने को आयी। ५०-६०-७० होवे, उसे तो इतने निकलने के नहीं होते। ५०-६० हुए हों, उसे ५०-६० निकलने होंगे? आहाहा! यह तो ९१ हुए। ९१ तो क्या अब १० भी निकलनेवाले नहीं हैं। आहाहा!

कहते हैं **भवभय के करनेवाले...** भविष्य में कहाँ भव होगा? आत्मा का यदि धर्म नहीं किया, आत्मा का ज्ञान नहीं किया, आत्मा जैसी चीज़ है, उसके सन्मुख नहीं हुआ तो कहाँ भव होगा। आहाहा! उस भव के भय के करनेवाले **समस्त सावद्यसमूह को छोड़कर,...** आहाहा! दुनिया के दिखाव के लिये नहीं। भवभय के डर के लिये सावद्य का त्याग, ऐसा कहते हैं। दुनिया माने कि मैंने ऐसी सामायिक करके बैठते हैं और प्रौषध किये हैं। दुनिया माने, वह नहीं। उसके अन्तर में भव के भय का त्रास (होता है)। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हो जाएगी। आत्मा तो अनादि-अनन्त है, तो कहाँ जाएगा? आहाहा! यहाँ से छूटा, ऐसा दूसरे भव में तुरन्त... आहाहा!

भव के भय करनेवाले जीव को कहाँ भव होगा? ऐसा भय है। वह आत्मा में आता है। आहाहा! आत्मा में भव और भव का भाव, दोनों का अभाव है। आत्मा में भव और भव का भाव, दोनों का अभाव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। भगवान आत्मा में भव भी नहीं, पुण्य-पाप भी नहीं, भव भी नहीं। भव का कारण पुण्य-पाप, वह भी नहीं। वह तो

ज्ञायकमूर्ति, चैतन्यमूर्ति प्रभु है। आहाहा! उसमें पर की ओर का विषय और सावद्ययोग तथा मन-वचन-काया तीनों से हटकर... आहाहा! **काय-वचन-मन की विकृति को निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** देखो! यहाँ तो शुभभाव को विकृति कही। काया का शुभभाव, वचन और मन से शुभभाव, वह विकृति है। आहाहा! उसे **निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** निरन्तर अर्थात् क्षणिक शुभभाव आया, इसलिए मानो कायम रहेगा। शुभभाव नाश (पायेगा)। मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। आहाहा! कठिन बात है।

निरन्तर नाश प्राप्त कराके, अन्तरंग शुद्धि से परम कला सहित... आहाहा! अन्तर शुद्धि से परम ज्ञानकला। आहाहा! 'ज्ञानकला सब जागी'। आहाहा! मन-वचन-काया की क्रिया, सावद्यक्रिया और इन्द्रियों के विषय यह तो सब अज्ञान क्रिया है। अज्ञान अर्थात् उसमें कुछ ज्ञान नहीं है। वह तो जड़ है। आहाहा! यह ज्ञानकला अन्दर है। **परम कला सहित (परम ज्ञानकला सहित) एक आत्मा को जानकर...** गुण-गुणी का भेद भी नहीं। एक आत्मा। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ एक स्वरूप आत्मा। सावद्य, इन्द्रियों के विषय। वह अणीन्द्रिय, सावद्य से निर्दोष, मन-वचन-काया के योग से रहित ऐसी जो आत्मा की ज्ञानकला। आहाहा! ज्ञानकला द्वारा **एक आत्मा को जानकर...** क्या कहा?

(परम ज्ञानकला सहित) एक आत्मा को जानकर... राग से नहीं ज्ञात होता, भेद से नहीं ज्ञात होता। ज्ञानकला (सहित) **एक आत्मा को...** एक आत्मा को। आहाहा! अभेद आत्मा को जानकर। आहाहा! ज्ञानकला द्वारा एक अभेद आत्मा को जानकर... आहाहा! जो स्थिर समभाव। **स्थिरशममय शुद्ध शील को प्राप्त करता है...** स्थिरशममय शुद्ध। शीलस्वभाव, शुद्धस्वभाव **प्राप्त करता है...** आहाहा! शुद्धस्वभाव प्राप्त करता है, वह सामायिक है। आहाहा! यहाँ तो प्रतिमा लेकर बहुत बैठे हों। सात-आठ प्रतिमा, आठ प्रतिमा और ग्यारह प्रतिमा। आहाहा!

बहुत वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिमाधारी आया था। कहे, आठ प्रतिमा है परन्तु अभी लोग आदर नहीं करते। ग्यारह प्रतिमा लेनी पड़ेगी, तब लोग आदर करेंगे। ऐसा कहता था। स्पष्ट कहता था। यहाँ जाना था न भाई को। चुन्नीभाई के यहाँ। किसने कहा? चुन्नीभाई के यहाँ जाना है। चुन्नीभाई का घर यहाँ है न? मूलशंकर का भाई। वहाँ आहार करने जाना है। मैं भी वहाँ जानेवाला हूँ। वह ऐसा कहता था कि आठ प्रतिमा ली है, परन्तु लोग आदर

नहीं करते। ग्यारह प्रतिमा लूँगा, तब आदर करेंगे। आहाहा! अरे रे! आदर कौन करे? किसका आदर? भाई! तुझे दूसरे से आदर करवाना है? वह तो बहिरात्मबुद्धि हुई। आहाहा! आत्मा को बाहर प्रसिद्ध होना है, इसका अर्थ बहिरात्मा है। अन्दर में समाना नहीं है परन्तु बाहर में प्रसिद्ध होना है... कुछ बाहर में प्रसिद्ध होना है। आहाहा! बाहर प्रसिद्ध होना है, वह बहिरात्मा है। आहाहा!

एक आत्मा को जानकर... देखा? आत्मा भी एक, भेद नहीं। गुण-गुणी भेद नहीं। ऐसा एक **जीव स्थिरशममय शुद्ध शील...** शुद्ध स्वभाव को **प्राप्त करता है...** अन्दर शुद्ध पवित्र जो स्वभाव है, उसे वह पर्याय में प्राप्त करता है। इसका नाम सामायिक है। आहाहा! यह सामायिक अप्रचलित है। चारों ओर सब... सामायिक-वामायिक की होगी या नहीं? की है। आहाहा!

(अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)। आहाहा! शाश्वत जो समतामय प्रभु, आहाहा! उस शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है। उसमें रमणता प्राप्त करता है। शाश्वत शुद्धस्वरूप भगवान में रमणता करता है, इसका नाम सामायिक है। आहाहा! अभी सामायिक की व्याख्या तो साधारण है। यह सामायिक की। आसन बिछाया, णमो अरिहंताणं... .... सात पाठ बोले इसलिए सामायिक हो गयी। फिर पढ़े कुछ या विकथा करे और या पढ़े। हो गयी सामायिक। आहाहा!

ताराचन्दभाई थे न? वारिया, जामनगर। वे आर्यिका को, साधु को सूत्र पढ़ाते थे। पहले-पहले मैं (संवत्) १९८२ के वर्ष में गया था। मैंने पहले-पहले जाकर पहले-पहले कहा कि मन-वचन-काया की क्रिया, वह शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है। वह सामायिक और प्रतिक्रमण नहीं है। वे भड़क गये। ताराचन्दभाई भड़क गये। कोई नहीं था तब अकेले आये। महाराज! ऐसा होगा? परन्तु देखो न! तुम्हारे पुनातर का बनाया हुआ ज्ञानसागर में क्या लिखा है?—कि मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता और झगड़े रहित इन चार से शुभनामकर्म बँधता है। धर्म नहीं। १९८२ के वर्ष की बात है। उन ताराचन्दभाई ने बहुत पढ़ा हुआ था। साधु को पढ़ाता थे और यह बात जहाँ आयी, वहाँ भड़क गये परन्तु व्यक्ति नरम। झगडालु या प्रकृति ऐसी नहीं। एकान्त में आये अकेले। महाराज! इसमें ऐसा आया परन्तु यह... देखो न तुम्हारे शास्त्र में। यहाँ की पुस्तक में। चार

कारण से तो शुभ, पुण्य नामकर्म बँधता है। मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता, झगड़ारहित। किसी के साथ झगड़ा नहीं। ऐसी अन्दर निवृत्ति, उसे तो शुभभाव कहते हैं। उसे शुभभाव कहते हैं, धर्म नहीं, कहा। परन्तु नरम व्यक्ति। स्वीकार किया था।

मुमुक्षु : वहाँ शुभयोग को सामायिक कही है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभयोग, वह सामायिक। कल यह साधु ने नहीं कहा था ? कि यह शुभयोग कहलाये न ? परन्तु शुभयोग अर्थात् क्या ? राग, जहर। अमृत का जीवन भगवान का। आहाहा ! अमृत से भरपूर भगवान, उससे विरुद्ध का शुभभाव, वह तो जहर है। आहाहा ! अरे ! कभी सुना नहीं। प्रभु अमृत से भरपूर है, पूर्णानन्द का नाथ अमृत से भरपूर, उससे विरुद्ध का शुभभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रत्याख्यान आदि, वह सब जहर है। आहाहा ! उस जहर से छूटकर अमृत जीवन में जाए, तब सामायिक होती है। आहाहा ! समझ में आया ?

स्थिरशममय शुद्ध शील... ऐसा कहा न ? शुभ नहीं कहा। शुद्ध कहा है। **शुद्ध शील को प्राप्त करता है...** अर्थात् अकेला शरीर का ब्रह्मचर्य, वह नहीं। शुद्ध शील स्वभाव। शुद्ध अन्दर स्वभाव भगवान शुद्ध स्वभाव है, उसे **प्राप्त करता है (अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)।** आहाहा ! भगवान वीतरागमूर्ति समतामय वस्तु है, उसमें चारित्र का घेरा डालकर स्थिर होता है। आहाहा ! चरना, स्वरूप में चरना चारित्र अर्थात् चरना। स्वरूप की दृष्टि होकर... आहाहा ! चारित्र अर्थात् स्वरूपदृष्टि में आया, ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसमें चरना, उसमें रमना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा ! यह तो समकित की ओर मिथ्यात्व की कोई खबर भी नहीं होती। हो गया चारित्र और हो गये साधु। भाई ! कठिन बात है, बापू ! आहाहा !

गाथा - १२६

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२६।।

यः समः सर्व-भूतेषु स्थावरेषु त्रसेषु वा।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलिशासने।।१२६।।

परममाध्यस्थ्यभावाद्यारूढस्थितस्य परममुमुक्षोः स्वरूपमत्रोक्तम्। यः सहजवैराग्यप्रासाद-शिखरशिखामणिः विकारकारणनिखिलमोहरागद्वेषाभावाद् भेदकल्पनापोढपरमसमरसी-भावसनाथत्वात्त्रसस्थावरजीवनिकायेषु समः, तस्य च परमजिनयोगीश्वरस्य सामायिकाभि-धानव्रतं सनातनमिति वीतरागसर्वज्ञमार्गे सिद्धमिति।

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायि सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१२६॥

अन्वयार्थ : [यः] जो [स्थावरेषु] स्थावर [वा] अथवा [त्रसेषु] त्रस [सर्वभूतेषु] सर्व जीवों के प्रति [समः] समभाववाला है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यहाँ, परम माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर स्थित परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।

जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि (अर्थात् परम सहजवैराग्यवन्त मुनि) विकार के कारणभूत समस्त मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण भेदकल्पना विमुक्त परम समरसीभाव सहित होने से त्रस-स्थावर (समस्त) जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है, उस परम जिनयोगीश्वर को सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है, ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।

गाथा - १२६ पर प्रवचन

१२६ गाथा, यह चलता...

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२६।।

यह तो सामायिक में आता है।

मुमुक्षु : अपने प्रतिक्रमण में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण में आता है। **जो समो सव्वभूदेसु** बहुत ऊँची गाथा है। इसका अर्थ तो करेंगे, परन्तु इसके आठ तो कलश लिखेंगे। एक गाथा के आठ कलश। क्योंकि यह तो प्रचलित गाथा है।

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।।१२६।।

नीचे (हरिगीत)

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायि सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१२६॥

केवली शासन वीतरागमार्ग में इसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा!

टीका : यहाँ, परम माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर... मध्यस्थ—पुण्य-पाप से रहित मध्यस्थ। अकेला वीतरागी भाव अन्दर भरा है, उसमें आरूढ़ होना। आहाहा! **माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर...** इत्यादि अर्थात् वीतराग आदि भाव। अन्दर त्रिकाली वीतरागी भाव शुद्धभाव, पवित्र भाव, निरावरण भाव, निरालम्बन भाव, ऐसी जो त्रिकाली चीज़, उसमें आरूढ़ होकर। आहाहा! यह तो शत्रुंजय आरूढ़ किया, ऊपर जरा चढ़े तो हो गयी यात्रा। साधु को देना। ऐसा शत्रुंजय माहात्म्य में लिखा है। यात्रा करके उतरकर साधु को दे तो बहुत लाभ होता है। चाहे जैसा साधु हो। आहाहा! साधु था कब?

मुमुक्षु : साधु को लाभ देने के लिये होकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु था कब साधु? शत्रुंजय लाख बार जा न। ऊपर चढ़ और

नीचे उतर। कदाचित् शुभभाव होगा। नीचे मुनि हो, वह मुनि भी सच्चा है कब ? आहाहा! बहुत कठिन काम है। आहाहा!

मुनि तो अन्दर और बाह्य नग्न होते हैं। बाह्य में नग्न और अन्दर में विकल्प से रहित, निर्विकल्प आनन्दकन्द में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आरूढ़ हुए हैं, आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। कोई पंच महाव्रत या क्रिया करे या नग्न हो जाए, इसलिए मुनिपना है, ऐसा नहीं है। बहुत कठिन काम, भाई! यहाँ **परम माध्यस्थभाव...** देखा ? मध्यस्थ। अकेला वीतरागभाव। भगवान आत्मा अकेला अनाकुल आनन्दमय भाव। प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के पूर्ण रूप भाव, उसमें **आरूढ़ होकर...** आहाहा! **स्थित परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।** उस परममुमुक्षु का स्वरूप इस गाथा में कहा है। जघन्य मुमुक्षु हो, वह नहीं। परममुमुक्षु की बात (करते हैं)। मुनि है न, तो मुनि की बात करते हैं। आहाहा!

यहाँ परम मध्यस्थभाव इत्यादि में। शुद्धभाव शुद्धउपयोगरूप होकर। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वह अशुद्ध उपयोग है। उस अशुद्ध भाव को छोड़कर शुद्धस्वरूप में आरूढ़ होकर। आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध पवित्र पिण्ड है, पवित्र मूर्ति है। पवित्र में आरूढ़ होकर... आहाहा! **स्थित...** आरूढ़ होकर उसमें स्थित **परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।** उसमें परममुमुक्षु का स्वरूप कहा गया है। इसलिए एक गाथा के आठ तो कलश हैं। आहाहा!

जो सहज वैराग्यरूपी... क्या कहते हैं ? आत्मा के अतिरिक्त बाहर की चीज़ में तो उदास है। आत्मा के अतिरिक्त विकल्प से लेकर सब चीज़ में जिसे उदासभाव है... आहाहा! क्योंकि वह मेरी चीज़ नहीं है। मेरी चीज़ नहीं, उसमें उदासभाव है। आहाहा! **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का...** सहज वैराग्य। आत्मा के अतिरिक्त किसी चीज़ के प्रति प्रेम नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वैराग्य महल कहलाये कुछ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि को वैराग्य कहलाता है।

मुमुक्षु : राजा का महल कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह महल अन्दर। क्या कहा ?

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि... ऐसे वैराग्य का... आहाहा! वैराग्य में झूलता-झूलता आत्मा। परसन्मुख से बिल्कुल उदास है। आत्मा के अतिरिक्त परसन्मुख से बिल्कुल उदास है और अन्तर में वैराग्य में आरूढ़ है। आहाहा! **शिखर का शिखामणि...** आहाहा! एक तो स्वाभाविक वैराग्य। स्वाभाविक वैराग्य उसे कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव से विरक्त, इसका नाम वैराग्य कहते हैं। दया, दान के भाव में रक्त, उसे अवैराग्य कहते हैं। वह राग है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में उदास है, उसे वैराग्य कहते हैं। उसमें प्रेम है, उसे अवैराग्य कहते हैं। वैराग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

स्वाभाविक वैराग्य। अन्तर आत्मा में अन्दर बैठक करने से... आहाहा! उदासीन। पर से आसन छोड़कर जिसने आत्मा के आनन्द में आसन लगाया। उदासीन। आहाहा! उदासीन। ऐसा वैराग्य सहज स्वाभाविक। हठ से नहीं। सहज वैराग्य। आहाहा! दुनिया की चीज़ के अनित्यता के भाव को देखकर, सहज वैराग्य आवे, उसे यहाँ वैराग्य का महल कहा। उसका शिखर अर्थात् विशेष वैराग्य। उसका शिखामणि। आहाहा! वैराग्य की धुन लगी है, कहते हैं। आहाहा!

(अर्थात् परम सहजवैराग्यवन्त मुनि) विकार के कारणभूत... आहाहा! **समस्त मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण...** विकार के कारणभूत समस्त मोह-राग-द्वेष। शुभ-अशुभभाव, मोह-राग और शुभ-अशुभभाव के **अभाव के कारण भेदकल्पना विमुक्त...** भेद की कल्पना से भी मुक्त। आहाहा! आत्मा आनन्द है, ऐसा भी भेद, यह भेद की कल्पना भी राग है। आहाहा! भगवान गुणी है और गुणवाला है, ऐसा विचार भी राग है। आहाहा! है? **भेदकल्पना विमुक्त... मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण भेदकल्पना विमुक्त...** उसे भेदकल्पना है ही नहीं। आहाहा! यह सामायिक। **परम समरसीभाव सहित...** परम वीतरागभाव सहित। अस्ति ली है और वैराग्य वहाँ पर से उदास था। यहाँ **परम समरसीभाव सहित...** शुद्धोपयोग में परम समरसीभाव आया। परम समताभाव, वीतरागभाव, अनाकुल भाव, आनन्द भाव, समता भाव आया। आहाहा! **सहित होने से...** ऐसे परमसमरसीभाव सहित होने से। **त्रस-स्थावर (समस्त) जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,...** आहाहा! एकेन्द्रिय का, निगोद के जीव के प्रति भी उसे मारने का

झुकाव नहीं। उदास.. उदास.. आहाहा! **जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,...** अर्थात् उस ओर का लक्ष्य ही नहीं है। आत्मा के वीतरागस्वभाव सन्मुख है, पर से तो समभाव है। आहाहा!

उस परम जिनयोगीश्वर को... यहाँ तो उत्कृष्ट से बात ली है न? **उस परम जिनयोगीश्वर को सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है,...** उसे स्थायी सामायिक है। **जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,...** आहाहा! कोई दुश्मन नहीं, कोई बैरी नहीं। सब जीवों के प्रति एकरूप भाव है। एकरूप भाव है। यह माता-पिता या पुत्र अनुकूल है और यह प्रतिकूल है, ऐसे सब विकल्प छूट गये हैं। आहाहा! अनुकूल और प्रतिकूल का विकल्प छूटकर परम वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में स्थित है। वह व्रत सनातन है। **ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।** ऐसी सामायिक सर्वज्ञ वीतराग के मार्ग में है। अन्यत्र ऐसी सामायिक नहीं होती। अन्य मार्ग में कहीं भी सामायिक-फामायिक नहीं होती। आहाहा! कबीर वैराग्य की बहुत बातें करे, जनकविदेही की बातें करे।

मुमुक्षु : आत्मा के बिना का वैराग्य आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिथ्या। यह तो अन्तर का वैराग्य है। वह तो जनकविदेही की बातें करता है। परन्तु स्वयं को अन्दर सम्यग्दर्शन कहाँ है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

अन्तर में चैतन्य चमत्कार वस्तु पड़ी है। चैतन्य चमत्कार जो एक समय में तीन काल, तीन लोक को देखे, ऐसी चीज़ पड़ी है। उस चीज़ का माहात्म्य करके परचीज़ में से माहात्म्य उठाकर... आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, उनमें से भी माहात्म्य उठाकर अन्दर स्वभाव के माहात्म्य में स्थिर होता है। आहाहा!

परम जिनयोगीश्वर को सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है,... आहाहा! अनादि जो वीतराग ने कहा, वह सामायिक है। **ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।** ऐसी सामायिक सर्वज्ञ वीतरागमार्ग में है, अन्यत्र कहीं नहीं है। किसी मार्ग में वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा!

अब इस १२६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज आठ श्लोक कहते हैं:

श्लोक-२०४

[अब इस १२६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज आठ श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

त्रसहतिपरिमुक्तं स्थावराणां वधैर्वा,
परम-जिन-मुनीनां चित्त-मुच्चै-रजस्रम् ।
अपि चरम-गतं यन्निर्मलं कर्म-मुक्त्यै,
तदह-मभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि ।।२०४।।

(वीरछन्द)

त्रस जीवों के घात और स्थावर के भी वध से मुक्त।
परम संयमी जिन मुनियों का रहे निरन्तर ऐसा चित्त॥
चरम अवस्था प्राप्त चित्त का स्तवन करूँ जो अति निर्मल।
कर्म मुक्ति के लिए नमूँ, सम्यक् भाता, करता वन्दन॥२०४॥

श्लोकार्थ : परम जिनमुनियों का जो चित्त (चैतन्यपरिणमन) निरन्तर त्रस जीवों के घात से तथा स्थावर जीवों के वध से अत्यन्त विमुक्त है, और जो (चित्त) अन्तिम अवस्था को प्राप्त तथा निर्मल है, उसे मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु नमन करता हूँ, स्तवन करता हूँ, सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥२०४॥

श्लोक- २०४ पर प्रवचन

आहाहा! है पश्चात्, हों! गाथाएँ हैं।

त्रसहतिपरिमुक्तं स्थावराणां वधैर्वा,
परम-जिन-मुनीनां चित्त-मुच्चै-रजस्रम् ।
अपि चरम-गतं यन्निर्मलं कर्म-मुक्त्यै,
तदह-मभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि ।।२०४।।

आहाहा! अब मुनिराज स्वयं कहते हैं।

श्लोकार्थ : परम जिनमुनियों का जो चित्त... आहाहा! जिन्हें आत्म-अनुभव होकर आत्मा में जमावट जम गयी है। चारित्र की जमावट जम गयी है। आहाहा! ऐसे मुनि को चारित्र होता है। **परम जिनमुनियों का जो चित्त (चैतन्यपरिणमन) निरन्तर त्रस जीवों के घात से तथा स्थावर जीवों के वध से अत्यन्त विमुक्त है,...** आहाहा! त्रस और स्थावर जीव हैं। उनके घात से वह विमुक्त है, उनकी ओर के झुकाव से विमुक्त है। आहाहा! **और जो (चित्त) अन्तिम अवस्था को प्राप्त...** ज्ञान। चित्त अर्थात् ज्ञान। वह ज्ञान **अन्तिम अवस्था को प्राप्त तथा निर्मल है,...** आहाहा! **उसे...** मुनिराज स्वयं कहते हैं, जिसका ज्ञान उत्कृष्ट निर्मल हुआ और पर से हट गया, **उसे मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु...** मैं कर्म से मुक्त होने के अर्थ **नमन करता हूँ,...** लो!

मुमुक्षु : ..... नमन करे तो कर्म से मुक्त हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त का कथन है। यहाँ कोई कहे कि उसके कर्म से मुक्त होने का हेतु नमन करना, यह है। नमन करना, वह तो शुभभाव है। परन्तु मेरी भावना अन्तर में नमन करने की है। अन्तर में झुकाव की भावना है। विकल्प आवे, उसका मुझे आदर नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन बातें! अभी जैनधर्म को अजैनरूप से कर डाला है। राग, पुण्य, विकल्प सब में अजैनपना और वह अजैन, जैन है। नाम धराता है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु मुनि कहते हैं, **मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु...** अर्थात् कोई भी पुण्यबन्ध मुझे हो और स्वर्ग मिले, ऐसा नहीं है। ऐसा लेना है। **मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु नमन करता हूँ,...** मैं तो अन्दर में नमन करता हूँ। सर्व कर्म से मुक्त होने के हेतु। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप में नमन करता हूँ। आहाहा! **स्तवन करता हूँ,...** उसका मैं स्तवन-स्तुति करता हूँ और **सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।** लो! भावना करता हूँ। सम्यक् प्रकार से शुद्ध चिदानन्द प्रभु, पुण्य-पाप के भाव की क्रिया से रहित ऐसा चैतन्य प्रभु, उसे दृष्टि में-ज्ञान में लेकर मैं उसकी भावना करता हूँ। उसमें एकाग्र रहने की भावना करता हूँ। शुद्ध स्वरूप चैतन्य में एकाग्र रहने की भावना करता हूँ। आहाहा! शुद्ध क्या और शुभ क्या? यह तो शुभ आवे, वह सब धर्म। आहाहा! यहाँ सब समयसार में पढ़ा है।....सब... बहुत होते हैं। यहाँ की पुस्तकें। उसे दूसरा छोटा है न भावसार? उसका जो फूफा है, वह यहाँ का प्रेमी है।

यहाँ बहुत बार आता है। भावसार है। कच्छ में जाता है। यहाँ की सब पुस्तकें देता है। पढ़ी है सब परन्तु एक शुभभाव... दस वर्ष की उम्र नहीं होवे और दीक्षा ली। कुछ भान नहीं होता की कि आत्मा क्या ?

मुमुक्षु : दीक्षा देनेवाले को कहाँ भान है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भान (नहीं) परन्तु वह तो छोटा है। कौन है ? खबर नहीं कि महाव्रत किसे कहना, समकित किसे कहना। बनिया ऐसा... है न ? उसे जयनारायण करे। ऐसे बाह्य क्रियाकाण्डवाले को वन्दन करे, चरणस्पर्श करे तो अपना निभे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं तो सम्यक् प्रकार से मेरे आत्मा को भाता हूँ। मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी मैं भावना करता हूँ। दूसरे की भावना मुझे नहीं है, इसका नाम सामायिक है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)